International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-10-2024, Accepted: 19-11-2024, Published: 04-12-2024
Volume 10, Issue 4, 2024, Page No. 48-52

# सगुण भक्ति और सांगीतिक स्वरुप

**डॉ. दिलंका रसांगी नानायक्कार**
हिंदी विभाग, सबरागमुवा विश्वविद्यालय, बेलिहुल ओया, श्रीलंका

**सारांश**
सगुण भक्ति भारतीय भक्ति परंपरा की वह धारा है जिसमें ईश्वर को साकार, सगुण और मूर्त रूप में आराध्य माना गया है। इसमें भगवान के विभिन्न रूपों जैसे राम, कृष्ण, शिव, देवी आदि की पूजा की जाती है। इस परंपरा के केंद्र में भक्ति और प्रेम का भाव है। सगुण भक्ति संतों और भक्त कवियों ने अपने भजनों, पदों और गीतों के माध्यम से इसे जन–जन तक पहुंचाया। इस सगुन धरा में सांगीतिक स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। भक्ति आंदोलन के दौरान संगीत का उपयोग भक्ति की भावना को व्यक्त करने और उसे जनमानस तक पहुंचाने के लिए किया गया। इसमें मुख्य रूप से भजन, कीर्तन, और दास्य भक्ति से जुड़े गीत गाए जाते हैं।
अतः यह विधित होता है कि सगुण भक्ति और उसका सांगीतिक स्वरूप भक्त और ईश्वर के बीच प्रेम, समर्पण और एकात्मता को प्रकट करता है। संगीत के माध्यम से यह परंपरा भारतीय समाज में अध्यात्म और सौहार्द का प्रचार करती रही है।

**मूल शब्दः** सांगीतिक, लीलाएँ, जनमानस, आराध्य

भारतीय संस्कृति और धर्म में भक्ति आंदोलन एक महत्वपूर्ण धारा रही है, जिसने समाज को एकजुट करने और अध्यात्म का प्रचार–प्रसार करने में अहम भूमिका निभाई। भक्ति को दो प्रमुख धाराओं में विभाजित किया गया हैः सगुण भक्ति और निर्गुण भक्ति। इनमें सगुण भक्ति का विशेष स्थान है, क्योंकि यह ईश्वर के साकार और सगुण रूप की आराधना पर आधारित है।
सगुण भक्ति में भगवान को मूर्त रूप में देखा गया है और उनकी दिव्य लीलाओं, रूप, गुण और महिमा का गान किया गया है। यह परंपरा राम, कृष्ण, शिव और देवी जैसे विभिन्न आराध्य देवताओं पर केंद्रित है। भक्ति आंदोलन के संतों, जैसे कि सूरदास, तुलसीदास, मीरा बाई और अन्य ने सगुण भक्ति को साहित्य और संगीत के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाया।
सगुण भक्ति का मुख्य माध्यम संगीत और काव्य रहा है। भक्ति आंदोलन के दौरान संगीत को ईश्वर से जुड़ने और भक्तों के मन में भक्ति का संचार करने का सबसे सरल और प्रभावी साधन माना गया। संगीत ने सगुण भक्ति को न केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्ति दी, बल्कि इसे जनसामान्य के बीच लोकप्रिय भी बनाया। भक्ति का प्रचार–प्रसार, सार्वजनिक अनुष्ठानों में उपयोग, आध्यात्मिक अनुभव जैसे संगीत के माध्यम से भक्त भगवान के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करते थे। राग, ताल और भावनाओं के मेल से यह अनुभव गहन और प्रभावशाली बनता था। साथ साथ भाषा और लोकधुनों का प्रयोग भी किया गया है। जैसे सगुण भक्ति के गीत सरल भाषा और लोकधुनों में रचे गए, ताकि आम लोग भी उन्हें आसानी से समझ और गा सकें।
अंततः यह बता सकते है कि सगुण भक्ति और उसका सांगीतिक स्वरूप न केवल ईश्वर से जुड़ने का एक मार्ग है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का भी प्रतीक है। यह परंपरा हमें यह सिखाती है कि संगीत और भक्ति का समन्वय मानव हृदय में प्रेम, समर्पण और आध्यात्मिकता का संचार करता है।

## तथ्य विश्लेषण

पूर्व मध्यकाल या तो भक्ति काल की कविताओं ने साहित्यिक स्तर पर एक ऐसा आन्दोलन खड़ा कर दिया, जिससे कविताएँ, राज महल के चार दीवारों से निकलकर गाँव में आम जनता के बीच में आयीं और उन कविताओं ने परंपराओं से चली आ रही राजाओं महाराजाओं की झूठी–सच्ची प्रशंसा के बदले आम जनता के हृदय में भगवान के प्रति स्पंदन जगाया। इसके फल स्वरुप भक्ति आन्दोलन का उदय हुआ। उस आन्दोलन में संगीत का भी अहम् भूमिका रही। वह इसलिए कि उन कविताओं ने लोक से जुड़ने का एक ही माध्यम संगीत बनाया।
भारत की प्रांतीय बोलियों के बारे में ऐसी कहावत है 'कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बदले वाणी' इसके अनुसार आम जनता की बोली केवल उनके आस–पास रहने वाले ही समझ सकते हैं। वे अन्य प्रांतीय भाषा बोल नहीं सकते। उन लोक भाषाओं में रची कविताओं का गायन वादन मंदिरों में ही हुआ करते थे। अतः जनसाधारण तक भक्ति कविता संगीत के माध्यम से ही प्रवेश हुई थी। विशेषतः उन पंक्तियों के कण–कण में अंतर्गत सांगीतिक तत्व एवं इन पंक्तियों की लयात्मकता ही इसका मुख्य कारण बना।
भक्ति काव्य की लयात्मकता सहज ही आम जनता को आकर्षित किया करती थी। भक्त, जब भी अपने ईश्वर, अपने आराध्य, अपने ईष्ट की वन्दना करते थे, तब अपने मन की भावनाओं को संगीत के द्वारा ही प्रकट किया करते थे। उसी अनन्य प्रेम तथा समर्पण की भावना स्वर, लय और ताल में बाँधे जाते थे, उसे भक्त संगीत कहलाते थे। उस संगीत के द्वारा भक्त सहज ही अपने भगवान के साथ तादात्म्य बना सकते थे। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक इसकी व्यापकता का विस्तार सभी को आश्चर्यचकित करता रहा। ऐसा कहा जाता है कि मानुषिक भावनाएँ जब हृदय में पूर्ण रूप से सिमट नहीं पाती तब वह कला का रूप लेती है। वही रूप भक्ति युगीन कवियों के कविताओं में सांगीतिक तत्व के रूप में विद्यमान हुआ। गाना, बजाना और नृत्य, तीनों तत्व संगीत के ही सम्मिलित तत्व हैं। वे भक्ति कविताओं में पाए जाते थे। भक्ति काव्य के वैष्णव सम्प्रदाय, अष्टछाप, कृष्णा काव्य आदि इसका जीता जागता उदाहरण हैं, जिसमें संगीत ने अहम् भूमिका निभायी थी।
इस विषय पर ध्यान आकर्षित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में लिखते हैं,– "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता से दब गयी थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चल कर ब्रज के करीलकुंजों के बीच फैल मुरझाए मानों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्री कृष्णा

की प्रेमलीला का कीर्तन कर उठी, जिसमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"[1]

वास्तव में भक्ति काव्य चार धाराओं में हमारे समक्ष आता है, जैसे कि राम काव्य धारा, कृष्ण काव्य धारा, संत काव्य धारा और सूफी काव्य धारा। कबीर जैसे संत और सूफी धाराओं के कवियों ने भगवान के निर्गुण–निराकार रूप को ही माना था। इसलिए वे निर्गुण भक्ति धारा के कवि बन गये और राम और कृष्ण सम्प्रदाय के कवियों ने भगवान के साकार रूप को माना था, उनकी लीलाओं के माध्यम से उनकी महिमा का गुणगान करते थे। अतः वे सगुण भक्त कवि हुए। जैसे,

**उदहारणवश; कृष्ण की लीलाएँ**

- **मक्खन चुरानाः** कृष्ण का यह कृत्य उनके बालपन की चंचलता और प्रेम को दर्शाता है। यह लीला भक्ति और स्नेह की भावना को प्रकट करती है।

- **रासलीलाः** कृष्ण और गोपियों के बीच की रासलीला कृष्ण भक्ति का गहरा प्रतीक है, जो प्रेम और समर्पण का भाव प्रकट करती है। इसमें गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति का प्रदर्शन होता है।

**राम की लीलाएँ**

- **सीता स्वयंवरः** भगवान राम का सीता के साथ विवाह इस बात का प्रतीक है कि सच्चा प्रेम और भक्ति हमेशा फलित होते हैं।

- **रावण का वधः** राम के रावण का वध केवल एक युद्ध नहीं है, बल्कि यह धर्म और अधर्म के बीच की लड़ाई का प्रतीक है। यह भक्तों को प्रेरित करता है कि वे अपने कर्तव्यों का पालन करें।

**देवी की लीलाएँ**

- **दुर्गा का महिषासुर मर्दनः** देवी दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध शक्ति और विजय का प्रतीक है। यह लीला भक्तों को साहस और शक्ति का अनुभव कराती है।

- **नवरात्रिः** इस दौरान देवी के विभिन्न रूपों की पूजा की जाती है, जो शक्ति और भक्ति के प्रतीक होते हैं।

**शिव की लीलाएँ**

- **तांडव नृत्यः** भगवान शिव का तांडव सृष्टि के निर्माण और विनाश का प्रतीक है। यह लीला जीवन की शक्ति को दर्शाती है।

- **गंगा को धारण करनाः** शिव द्वारा गंगा को अपनी जटा में धारण करना उनकी दयालुता और सहिष्णुता का प्रतीक है।

फिर भी इन चारों धाराओं के कवियों को एक करने वाला एक ही तत्व संगीत रहा। वही संगीत भक्ति के चरों रूपों में अलग–अलग तरीके से उन धाराओं के कवियों की कविता में प्रकट हुई थी।

यहाँ सगुन भक्ति धारा पर ध्यान दिया जाएगा। सगुन भक्त कवियों ने संगीत को ही अपना उपादान बनाया था। भजन–कीर्तन के माध्यम से उस समय भगवान के साकार रूप की आराधना की जाती थी। भक्तजन भगवान की पूजा विभिन्न रूपों में किया करते थे, जैसे कि कृष्ण, राम, शिव, या देवी मां के रूप में। संगीत के माध्यम से भक्ति को प्रकट करने का यह तरीका आत्मिक शांति, भक्तिभाव और आध्यात्मिक अनुभूति को बढ़ाता था। भक्ति काल की वह परंपरा हमें वैदिक युग से देखने को मिलती है। सामवेद सांगीतिक तत्वों से ही बुना गया था। वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की आधारभूत भी गेय पद था, जिसका प्रसार भारत के विभिन्न भाषाओँ में हुआ था। संगीत की स्वरलहरियों में शब्दों का जादू न केवल उच्च स्तर के लोग प्रभावित करता था बल्कि आर्थिक सामाजिक रूप से गिरी हुई निचले तबके की जनता को भी अन्दर तक प्रभावित करता था। संत साहित्य की मूल्यवत्ता को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा व्यंग्य करते हैं, "राम अथवा लीला कीर्तन, संगीत के प्रति नवजागरण, संत संगीतज्ञ, ध्रुपद की शिक्षा– ये बड़े सारगर्भित शब्द हैं। कुछ दृष्टिहीनों के लिए जो अन्धकार है, वह दृष्टिवालों के लिए नवजागरण है। यह संगीत के प्रति नवजागरण है–गायन, वादन के साथ नृत्य अनिवार्य है। एक परंपरा संत संगीतज्ञों की भी है। इन संगीतज्ञों से दूर के लोगों ने ध्रुपद की शिक्षा पायी। मानसिंह और अकबर दोनों के दरबारों से बाहर रहते हुए ध्रुपद– गायन की यह परंपरा विक्सित होती रही।"[2]

रामविलास शर्मा भक्ति काव्य जनसाधारण के साथ जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार भक्ति काव्य उस समाज के पाखंडों को ख़तम करने का योगदान दिया उसी प्रकार संगीत भी भक्ति काव्य को जनता तक पहुँचाने में अपनी प्रबल भूमिका निभायी। उनकी टिपण्णी के अनुसार,– "15 वीं 16 वीं सदियों के हिन्दी कवियों ने जनपदीय भाषाओँ में रचनाएँ की, पर ये रचनाएँ किसी एक जनपद तक सीमित नहीं थीं, काव्य के साथ संगीत जुड़ा हुआ था। ये कवि गाते भी थे। इनके पदों के साथ रागों का नाम अब तक लिखे जाते थे। सूर, कबीर, मीरा तुलसीदास के पद समस्त हिन्दी प्रदेश में गाये गये और आज भी गाये जाते हैं। इस तरह हिन्दी प्रदेश के सांस्कृतिक एकीकरण और जातीय चेतना के विकास में इन कवियों का बहुत बड़ा योगदान है। साथ ही यह जातीय चेतना राष्ट्रीय चेतना के विकास में भी सहायक सिद्ध हुई। विद्यापति को बंगाल के बुद्धिजीवियों ने अपना कवि माना। कबीर के पद गुरु ग्रंथसाहब में संकलित किये गये और अनेक गुजराती बुद्धिजीवी मीरा को अपने प्रदेश की कवयित्री मानते हैं। इस तरह हिन्दी प्रदेश के पूर्वी, उत्तरी और पश्चिमी जनपदों के कवियों ने पड़ोसी प्रदेशों से घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये।"[3] इस प्रकार भक्ति कविता और संगीत के अंतर सम्बन्ध रामविलास शर्मा ने रेखांकित किया था।

संगीत और कविता का तारतम्य रविन्द्रनाथ ने भी उदधृत किया था। "गतिशील भाव संगीत के लिए पूरी तौर से अनुसरणीय है, ऐसा नहीं, लेकिन संगीत अभी पूर्णतया उस अवस्था को पहुंचा नहीं। संगीत और कविता में हम और कुछ प्रभेद नहीं देखते, केवल उन्नति का तारतम्य है। दोनों यमज है, एक ही माँ की संतान है, दोनों की शिक्षा में वैलक्षन्य मात्र हुआ है। यह स्पष्ट हो गया कि संगीत और कविता एक श्रेणि के हैं।"[4]

वास्तव में सगुन भक्त कवियों की भाषा जितनी विशिष्ट थी उतनी उनकी संगीत की स्थिति भी थी। अनेक महात्माओं ने सगुन भक्ति के माध्यम से जनता को शीतलता प्रदान की। जिनमें बनारस में तुलसी, बंगाल में चौतन्य, ब्रज देश में सूर, राजस्तान में मीरा प्रमुख थे। भक्ति काल के सन्दर्भ में संगीत को लेकर मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं,– "भारतीय संतों की काव्य रचना के आगे संगीत में उनका योगदान प्रायः भुला दिया गया है। जिसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता है और जो मूलतः उसके वे निर्माता है। ध्रुपद गायकी का विकास राजदरबारों में मानसिंह, अकबर, शाहजहाँ आदि को कलावन्तों के संरक्षण का श्रेय उचित ही दिया जाता है। किन्तु उसका जन्म दरबारों में न हुआ था। आचार्य बृहस्पति ने ध्यान दिलाया है कि अबुल फज़ल के अनुसार आगरा के आस–पास के क्षेत्र में अर्थात ब्रज नाम के जनपद में, ध्रुपद गाया जाता था और ग्वालियर के ब्रजभाषा काव्य की भाषा बनी और संगीत की भाषा भी बनी। संगीत और काव्य अलग–अलग नहीं थे। तानसेन गायक रूप में प्रसिद्ध हैं। परन्तु वह कवि भी थे।"[5]

ऐसा माना जाता है कि भक्ति काल संगीत का स्वर्णिम काल था। इसका अर्थ इस बात से और भी स्पष्ट होता है कि उस काल में जितने भी भक्त कवि–कवयित्रियाँ, अन्य भजन गायक– गायिकाएँ हुए, उन्होंने भक्ति काल को स्वर्णिम बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आज भी घर–घर में भक्ति कविता गायी जाती है। चाहे तुलसीदास के रामचरित मानस हो, चाहे सूरदास के सूरसागर हो, चाहे सूफी कवि जायसी की पद्मावत हो, चाहे कबीरदास की कबीर वाणी हो, अपने सांगीतिक रूप में आज भी आम जनता के बीच मौजूद है। उस सांगीतिक स्वरूप के कुछ प्रमुख पहलुओं का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।

एक पहलू है भजन गायन। उस समय भक्तों द्वारा किये गये भजनों का प्रयोग आम जनता में बहुत शीघ्र बढ़ गया था। उन भजनों से इश्वर के अनोखे रूप का वर्णन किया जाता था। भजन एक प्रकार का भक्तिपूर्ण गायन शैली था, जो सगुन भक्तों ने अपने भगवान की स्तुति में गाया था। इसमें सरल और मधुर संगीत का प्रयोग किया जाता था ताकि सभी लोग आसानी से इसे गा सकें और समझ सकें। आमतौर पर यह भजन किसी विशेष देवता, संत, या गुरु की महिमा में गाए जाते थे। यह हिन्दी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगाली जैसी विभिन्न भाषाओं में देखा जा सकता था। तुलसीदास, सूरदास, मीरा बाई, जैसे सगुन संतों के रचित भजन आज भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

भजन की तरह कीर्तन भी उस समय प्रसिद्ध सांगीतिक तत्व था। कीर्तन भक्ति का एक सामूहिक संगीत रूप था जिसमें भगवान के नाम, उनकी लीलाओं और गुणों का गान किया जाता था। यह आम तौर पर समूह में होता था, जहां एक मुख्य गायक होता था जो श्लोक या भजन गाता था और बाकी लोग सामूहिक रूप से उसे दोहराते थे। इसमें तालवाद्य, झांझ, मंजीरा और ढोलक जैसे वाद्य यंत्रों का उपयोग होता था, जो इस गायन को और भी ऊर्जावान और जीवंत बनाते थे।

हरिकीर्तन और नाम संकीर्तन भी उस समय की गान शैली थी, जिसमें विशेष रूप से भगवान के नाम का बार–बार उच्चारण किया जाता था। यह गहन भक्ति और ध्यान का एक रूप था जिसमें भक्तजन एक साथ मिलकर भगवान के नाम का स्मरण करते थे। इस प्रकार के कीर्तन में लयबद्धता और ताल का विशेष महत्व होता था, जिससे भक्ति की अनुभूति और भी गहरी हो जाती थी।

सगुन भक्ति के दौरान जब भक्त भजन गाता था या कीर्तन में सम्मिलित होता था, तो वह अपने अंदर एक गहरी शांति और आनंद का अनुभव करता था। यह अनुभव उस समय गहन हो जाता था जब भक्त ईश्वर के नाम का स्मरण करता था और उनकी लीलाओं का ध्यान करता था। भजन और कीर्तन का संगीत और शब्द उनकी आत्मा को छूते थे और मन को शांत करते थे। इस भक्ति के माध्यम से भक्त अपने जीवन की सभी चिंताओं और कष्टों को भगवान के चरणों में समर्पित कर देता था। यह समर्पण भक्त को मानसिक शांति और आत्मविश्वास देता था। उसे यह विश्वास होता था कि भगवान उसकी सभी समस्याओं का समाधान करेंगे और उसे सही मार्ग पर ले जाएंगे। वे ईश्वर को अपने माता–पिता, मित्र, प्रेमी, या गुरु के रूप में अनुभव करता था। यह एक ऐसा संबंध था जो बहुत ही निजी और भावनात्मक होता था। भक्त भगवान को अपने जीवन के हर पहलू में शामिल महसूस करता था, चाहे वह सुख हो या दुख। यह व्यक्तिगत अनुभव भक्त को यह अहसास दिलाता था कि भगवान हमेशा उसके साथ थे और उसकी हर स्थिति में सहायक थे। ईश्वर की लीलाएँ भक्तों के लिए एक सजीव अनुभव प्रदान करती थीं। ये लीलाएँ केवल धार्मिक कथाएँ नहीं थी, बल्कि जीवन के गहरे सबक और आदर्शों का प्रतीक थी। भक्त इन लीलाओं के माध्यम से अपने जीवन में प्रेम, भक्ति, और नीतिगत मूल्य स्थापित करते थे। कई धार्मिक उत्सव, जैसे जन्माष्टमी, रामनवामी, होली, और अन्य धार्मिक पर्वों के अवसरों पर भक्तजन विशेष भजनों और कीर्तनों का आयोजन करते थे। इससे वे यह उम्मीद करते थे कि नृत्य और संगीत के माध्यम से भगवान के साथ अपने प्रेम और उत्साह को और भी गहरा बना सकें।

भजन और कीर्तन के माध्यम से जो ऊर्जा उत्पन्न होती थी, वह सकारात्मकता और उत्साह का संचार करती थी। सामूहिक कीर्तन में जब सभी लोग एक साथ मिलकर भगवान के नाम का उच्चारण करते थे, तो उस वातावरण में विशेष प्रकार की ऊर्जा का अनुभव होता था। यह ऊर्जा न केवल भक्ति को गहरा करती थी, बल्कि जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना करने की शक्ति भी प्रदान करती थी। यही नहीं सगुन भक्ति के अनुभव से भक्त को धीरे–धीरे आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होती थी। ईश्वर के साकार रूप की उपासना करते हुए भक्त ध्यान, साधना और भक्ति के माध्यम से अपनी आत्मा की यात्रा को आगे बढ़ाता था। सगुन भक्ति उसे न केवल ईश्वर के करीब लाती थी, बल्कि उसकी आत्मा को भी शुद्ध करती थी।

यही नहीं सगुन भक्ति में लोक संगीत और धार्मिक लोकगीतों का भी महत्वपूर्ण योगदान था। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भक्ति संगीत की विभिन्न शैलियाँ थीं, जैसे कि ब्रज में रासलीला के गीत, राजस्थान में मीरा के भजन, बंगाल में श्यामसंगीत, और महाराष्ट्र में अभंग। ये सभी क्षेत्रीय संगीत शैलियाँ भगवान की आराधना का अनूठा तरीका प्रस्तुत करती थीं और भक्तों के हृदय में भक्ति भाव जगाती थीं। ध्रुपद और धमार जैसी शास्त्रीय संगीत शैलियाँ भी सगुन भक्ति में उपयोग की जाती थी, विशेष करके वैष्णव भक्ति में। ये शास्त्रीय संगीत शैलियाँ गहरे और गंभीर भक्ति भाव को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त होती थीं। इसमें रागों का महत्व होता था, जो भक्ति संगीत को एक आध्यात्मिक गहराई प्रदान करता था। सगुन भक्ति में संगीत के राग और ताल का विशेष महत्व होता था।

उस समय के प्रयोग किये गये रागों के नाम और शास्त्रीय संगीत की शैलियों का प्रयोग आदि से इस बात को प्रमाणित करता है कि सगुन भक्ति के काव्य अधिकतर शास्त्रीय संगीत के निकट थी। इसका उदारहरण है उन कविताओं में चतुरता से प्रोयोग की गयी ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि गान शैलियाँ। उस समय के चित्रकारों ने भी संगीत के विकास में बड़ा योगदान दिया था। राजपूत शैली में चित्र बनाने वाले चित्रकारों ने अपनी भक्ति मूर्तिमान करने के लिए उसमें धारावाहिक चित्रण आरम्भ किया। संगीत सम्बन्धी भावों का वर्णन रागों का गायन शैली रेखाओं द्वारा प्रस्तुत किया था। ऐसा माना जाता है कि राजपूत कालीन चित्र ब्रज भाषा काव्य से सम्बन्ध रखती थी, जो वैष्णव धर्म के पुनर जीवित होने पर विकसित हो गया था। गायक आत्मप्रेरण हो कर गोपियों के साथ मिलकर कृष्ण के छल प्रेम लीला गाते थे और चित्रकार कृष्ण और गोपियों के उस प्रेम लीला को चित्रित किया करता था।

विभिन्न रागों का चयन भक्ति की भावना को और भी प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता था। जैसे कि राग यमन या भैरव का प्रयोग सुबह की भक्ति के लिए किया जाता था, जबकि राग दरबारी का उपयोग रात की भक्ति के लिए। ताल भी संगीत के भाव को बढ़ाने में मदद करता था, जैसे कि कीर्तन में एक तेज ताल का उपयोग भक्ति के उत्साह को दर्शाता था। ब्रज प्रदेशों में कृष्ण भक्ति धारा अविरल प्रवाहित होने के कारण अष्टछाप के कवि, सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भन दास, चतुर्भुज दास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी और छीत स्वामी अदि ने कृष्ण भक्ति के पदों से ब्रज प्रदेशों को गुंजायित किया। उस काव्य धारा में प्रयुक्त गीत और नृत्य से यह स्पष्ट होता है कि संगीत के बिना उस धारा को समझना कठिन कार्य है। इसपर आलोचना करते हुए डॉ. फणीश सिंह लिखते हैं– "यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति काव्य संगीत की पृष्ठभूमि में विकसित

हुआ है, सभी कवि संगीत विद्या में निपुण थे और उनमें अधिकांश कीरतन आदि किया करते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने जिन आठ कवियों को अष्टछाप की संज्ञा देकर श्रीनाथ मंदिर में अष्टयाम सेवा के लिए नियुक्त किया, वे आठों ही संगीत में निपुण थे और मधुर पद गाते थे।"[6] रास लीला के रूप में, कृष्ण लीला के रूप में, भजन के रूप में, नाटकों के रूप में, ध्रुपदों, होरियों, धमारों, यहाँ तक कि ठुमरियों और ख्यालों की बंदिशों में भी अष्टछाप के कवि और अन्य कवियों ने सांगीतिक तत्वों का प्रयोग किया था।
अष्टछाप कवियों में प्रमुख कवि सूरदास, कवि ही नहीं, बल्कि संगीत के एक ज्ञानी भी थे। यहाँ संगीत से आशय शास्त्रीय संगीत है। सूरदास को संगीत के ज्ञानी इसलिए कहा गया, क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में पद से पूर्व रागों का उल्लेख किया था। इससे यह प्रमाणित होता है कि वे अपने पदों का प्रस्तुतीकरण राग के माध्यम से ही किया हो। इस सन्दर्भ में 'सूर संगीत' पुस्तक में डॉ. गर्ग लिखते हैं,– " प्रचलित संगीत पर वैष्णव सम्प्रदाय का महान ऋण है। वैष्णव मंदिरों में भगवान के जो लीलागान गाये जाते हैं एवं जो आठों पहर और छहों ऋतुओं के समयानुकूल लीलागान की परिपाटी दीर्घकाल से चली आ रही है इस परिपाटी में संगीत जगत को बड़ा ही अमूल्य योगदान दिया है, आज के प्रचलित ध्रवपदों, होरियों, धमारों तथा ख्यालों के पदों के सूक्षम एवं अभ्यासपूर्ण निरीक्षण से यह कथन भली भाँती परिपुष्ट हो जाएगा।" सूरदास, परमानंद दास, कुम्भनदास लक्ष्मीदास आदि की भक्ति कविताओं में अंतर्गत ललित भावों से भरे मधुरिम गीत गर्ग की इस बात की पुष्टि करती है। कहते हैं कि एक भक्त ही देश में सर्व श्रेष्ट गायक का निर्माण कर सकता है। अतः संगीत के विद्वान, गायक तानसेन के महान गुरु, स्वामी हरिदास हुए जो वैष्णव सम्प्रदाय के एक भक्त थे।
सूरदास के 'भ्रमर गीत' से उद्धृत राग 'तोड़ी' का यह सुन्दर भजन देखिए;

अँखियाँ हरि–दरसन की भूखी।
कैसे रहैं, रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इकटक मन जोवत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग–सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हटि नाव चलायो ये सरिता हैं सूखी ॥

सूरदास के अतिरिक्त उनके समकालीन गोविन्द स्वामी भी उस समय के श्रेष्ट संगीतज्ञ होने का प्रमाण मिलता है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी हरिवंश भी एक अच्छा गायक था। यही नहीं कहते हैं कि हरिदास और परमानंद दास भी संगीत का ज्ञान रखते थे। श्री हरिदास के पद संगीत के रागों से बंधा हुआ था। महान कवि, संगीतकार, वाग्गेयकार की उपाधि से मानने वाले स्वामी हरिदास के गायन की प्रशंसा करते हुए हरिराम व्यास ने कहा–"राग सहित हरिदास रस नदी बही न थहाथ।" यही नहीं स्वामी हरिदास जी की संगीत उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए नाभादास ने भी यही कहा कि– "गान कला गन्धर्व स्याम स्यामा को तौषे।"[7] स्वामी जी का उद्देश्य संगीत के माध्यम से अनंत साधना करना था। इसलिए उनके साधना पद्धति में उनके पदों की संगीतात्मकता का मधुर समन्वय देखा जा सकता है। स्वामी जी के सम्पूर्ण रचना केवल 128 पदों में ही सीमित है और भाषा ब्रज भाषा थी। उन्होंने अपनी पूरी अनुभूतियों को इन पदों में संगृहीत कर संगीत के रागों से सुसज्जित करके आम जनता के सामने प्रस्तुत किया था। उनके अठारह पदों का संग्रह 'अष्टदशा सिद्धांत के पद' में मिलता है। उसमें राग आसावरी, बिलावल, कल्याण और विभास का उल्लेख मिलता है। बाकि एक सौ दस पदों का संग्रह 'केलिमाल' में कान्हड़ा, केदार, नट, कल्याण, बसंत, मलार, सुघराई, सारंग, गौरी, बिलावल अदि रगों में रखा गया है।

उदाः **राग मलार–** "राग मलार जम्यौ री किसोर–किसोरिनी'
**राग केदार–** 'नृत्त जुगल किसोर जुवति जन मन मिलि राग केदारौ मच्चौ"[8]

इस प्रकार के संगीत ज्ञान से पूर्ण महारथियों के कारण उस समय की भक्ति कविता संगीत के सहचरी के रूप में विकसित हो कर बढ़ने लगी। संगीत और कविता में एक मेल है। कविता संगीत को भाषाई ताकत देती है और संगीत कविता को अपनी माधुर्य गुण, रंजनात्मकता और संप्रेषनीय गुण से भराती है। यही गुण भक्ति काल के सगुन भक्ति धारा के कवियों में भी देखने को मिलता था।
इन्हीं कवियों के अलावा भक्ति काल को स्वर्णिम बनाने में उस काल की कवयित्री मीराबाई के योगदान भी हम भूल नहीं सकते। मीरा के युग को ऐसा कहा जाता था कि "भक्ति संगीत के स्वर्ण युग" अथवा "मीरा सांगीतिक युग"। मीरा को संगीत, काव्य व साहित्य की त्रिवेणी भी मानी गयी और वे इन तीनो कलाओं की ज्ञानी भी थीं। बाल्य काल में ही यह राजस्थान की मीरा की रूचि भगवान कृष्ण की पूजा करना था। साधु संतों के साथ भगवान की भक्ति में वे इतनी लीन हो जाती थी कि भगवान कृ ष्ण को ही अपना सबकुछ मानने लगी। उन्होंने द्वारिका और वृन्दावन में भजन और कीर्तन करके अपना पूरा जीवन भगवान को समर्पित कर दिया और सदैव भगवान कृष्ण को ही अपने पति स्वीकार कर लिया। वे कहती है –"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई"। उनकी यह भक्ति भावना और सांगीतिक विचार राजस्थान के ही नहीं पूरे जनमानस के लिए अनमोल धरोहर एवं एक प्रेरणा थी।

'हे री मैं तो प्रेम–दीवानी,
मेरो दर्द न जाणो कोय।
घायल की गति घायल जाणे,
जो कोई घायल होई।।'

मीरा के सरल भाषा से रचित पदों में विरह की वेदना, त्याग, समर्पण, प्रेम, अनुराग आदि सभी स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। उन भावों को मीरा ने लोक संगीत और नृत्य के द्वारा ही जनमानस तक पहुँचाया। साहित्यिक, धार्मिक संदेशों को उन्होंने लोक संगीत के माध्यम से ही प्रस्तुत किया। उनकी काव्य के द्वारा संपूर्ण जीवन का सुख–दुःख, उतार–चढ़ाव का अत्यधिक वर्णन मिलता है। उनके पदों से समाज में जो परिवर्तन आया था, उसका मुख्य कारण उन पदों में अंतर्गत सांगीतिक तत्व ही है। अतः भक्त शिरोमणी मीरा का नाम आज भी आम जनता के बीच जीवित है। पाँच सौ वर्ष के लम्बे अंतराल को बीत जाने के बाद भी जन–कंठों, संतों एवं भक्त कवियों ने मीरा को एक सांस्कृतिक विरासत के रूप में माना। साज, करताल, एकतारा, आदि वाद्यों का वर्णन, ज्ञानकारी मीराबाई के ही संगीत साधनों में ही प्राप्त होती है। वह प्रियतम के लिए गाती थी और नृत्य भी करती थी। उनके द्वारा रचित भगवान श्री कृष्ण के भक्त पद अनेक रगों और तालों में बंधे हुए हैं।

मीरा का पद 'बरसे बदरिया सावन की' राग मालकौंस

बरसे बदरिया सावन की 1 – सावन की मन भवन की 11
सावन में उमंगयो मेरो मनवा 1– झनक सुनी हरि आवन की 11

उमड़ घुमड़ चहुँ दिशा से आयो 1 – दामिनी धमाके झर लावन की 11
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर 1 – आनंद मंगल गावन की 11

सगुन भक्ति धारा की कृष्ण भक्ति शाखा की कविताओं में ही नहीं अपितु दूसरी शाखा राम भक्ति की कविताओं में भी सांगीतिक तत्व दिखाई देती है। राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास थे। वे स्वयं अच्छे गायक थे। उनके द्वारा रचित रामचरित मानस आज भी अगर जन–जन में कंठस्थ हुआ हो तो वह इसलिए कि उसमें अंतर्गत सांगीतिक तत्व के कारण है। उन्होंने इस महान धर्म ग्रन्थ को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया था। उन्होंने रामचरित मानस से ऐसे स्थलों की पहचान की, उसमें ऐसे भावों से फिरोया, ऐसी भाषा और शैली का उपयोग किया एवं ऐसे छंदों का प्रयोग किया कि आज भी उस ग्रन्थ ने सुदूर देहात से लेकर शहर और अन्तराष्ट्रीय स्थर तक अपनी पहचान बनायी।

इस प्रकार देखा जाए तो सगुन भक्ति में सांगीतिक स्वरूप का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा। वह भक्ति की भावना को गहनता प्रदान करता था और भक्तों को ईश्वर के करीब ले जाता था। अतः ईश्वर की आराधना और भक्ति भाव को प्रकट करने का सशक्त माध्यम केवल संगीत ही था। संगीत का उपयोग सगुन भक्ति में भगवान के साकार रूप की महिमा, उनकी लीलाओं और गुणों को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया था। यही नहीं संगीत के माध्यम से भक्तों के मन, हृदय, और आत्मा को एक साथ जोड़कर उन्हें एक अद्वितीय आध्यात्मिक अनुभव प्रदान करता था।

## संदर्भ सूची


1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सूरदास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 157
2. रामविलास शर्मा, संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन नहीं दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ 198
3. रामविलास शर्मा, भारतीय संस्कृतिक और हिन्दी प्रदेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, खंड–2, संस्करण 2018, पृष्ठ 549
4. रविन्द्रनाथ टैगोर, संगीत चिंतन, वाणी प्रकाशन, संस्करण –2010, पृष्ठ 28
5. रामविलास शर्मा, संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन नहीं दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ 113
6. डॉ. फणीश सिंह, हिन्दी साहित्यः एक परिचय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशित वर्ष 2006
7. डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, हरिदास रस सार, हरिदास अंक 01, पृष्ठ 61
8. डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, हरिदास रस सारः केलिमाल, पद सं.06, पृष्ठ 62